१३ कर्म और पुरुषार्थ

☐ युवाचार्य महाप्रज्ञ

हम चर्चा करते हैं स्वतंत्रता और परतंत्रता की। कौन स्वतंत्र है और कौन परतंत्र, कौन उत्तरदायी है, इन प्रश्नों का उत्तर एकान्त की भाषा में नहीं दिया जा सकता। हम नहीं कह सकते कि हम पूर्ण स्वतंत्र हैं। हम यह भी नहीं कह सकते कि हम पूर्ण परतंत्र हैं। दोनों सापेक्ष हैं। हम स्वतंत्र भी हैं और परतंत्र भी। जहाँ-जहाँ निरपेक्ष प्रतिपादन होता है वहाँ समस्या का समाधान नहीं होता, सत्य उपलब्ध नहीं होता, सत्य के नाम पर असत्य उपलब्ध होता है।

महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन ने सापेक्षवाद का प्रतिपादन किया और उसका आधार माना प्रकाश की गति को। उन्होंने प्रकाश की गति को स्टेण्डर्ड मानकर अनेक प्रयोग किए। प्रकाश की गति है एक सैकेण्ड में एक लाख छियासी हजार मील की। इस आधार पर जो निर्णय लिए गए वे सारे सापेक्ष निर्णय हैं, निरपेक्ष नहीं। प्रकाश की गति सापेक्ष निर्णय है। प्रकाश की गति और तीव्र होती तो सारे निर्णय बदल जाते। काल छोटा भी हो जाता है और बड़ा भी हो जाता है। काल सिकुड़ जाता है सापेक्षता से। काल पीछे सरकता है और छलांग भी भरता है। काल का प्रतिक्रमण भी होता है और अतिक्रमण भी होता है। यह सारा सापेक्षता के आधार पर होता है। इसलिए सारे निर्णय सापेक्ष होते हैं। जहाँ सापेक्षता की विस्मृति होती है वहाँ तनाव पैदा होता है।

काल, स्वभाव, नियति, कर्म—ये सारे तत्त्व स्वतंत्रता को सीमित करते हैं, परतंत्रता को बढ़ाते हैं। आदमी काल से, स्वभाव से, नियति से और कर्म से बंधा हुआ है। बंधन के कारण वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं है। वह परतंत्र है पर पूरा परतंत्र भी नहीं है। यदि वह पूरा परतंत्र होता तो उसका व्यक्तित्व ही समाप्त हो जाता। उसका मनुष्यत्व ही समाप्त हो जाता और चेतना का अस्तित्व ही नष्ट हो जाता। चेतना रहती ही नहीं। उसका अपना कुछ रहता ही नहीं। वह कठपुतली बन जाता। कठपुतली पूर्णतः परतंत्र होती है। उसे जैसे नचाया जाता है वैसे नाचती है। कठपुतली नचाने वाले के इशारे पर चलती है। उसका अपना कोई अस्तित्व या कर्तृत्व नहीं है, [चेतना नहीं है।] जिसकी अपनी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चेतना नहीं होती वह परतंत्र हो सकता है, पर शतप्रतिशत परतंत्र तो वह भी नहीं होता ।

प्राणी चेतनावान् है । उसकी चेतना है । जहाँ चेतना का अस्तित्व है वहाँ पूरी परतंत्रता की बात नहीं आती । दूसरी बात है—काल, कर्म आदि जितने भी तत्त्व हैं वे भी सीमित शक्ति वाले हैं । दुनिया में असीम शक्ति संपन्न कोई नहीं है । सब में शक्ति है और उस शक्ति की अपनी मर्यादा है । काल, स्वभाव, नियति और कर्म—ये शक्ति-संपन्न हैं, पर इनकी शक्ति अमर्यादित नहीं है । लोगों ने मान रखा है कि कर्म सर्वशक्ति संपन्न है । सब कुछ उससे ही होता है । यह भ्रान्ति है । यह टूटनी चाहिए । सब कुछ कर्म से नहीं होता । यदि सब कुछ कर्म से ही होता तो मोक्ष होता ही नहीं । आदमी कभी मुक्त नहीं हो पाता । चेतना का अस्तित्व ही नहीं होता । कर्म की अपनी एक सीमा है । वह उसी सीमा में अपना फल देता है, विपाक देता है । वह शक्ति की मर्यादा में ही काम करता है ।

व्यक्ति अच्छा या बुरा कर्म अर्जित करता है । वह फल देता है, पर कब देता है, उस पर भी बंधन है । उसकी मर्यादा है, सीमा है । मुक्त भाव से वह फल नहीं देता । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये उसकी सीमाएँ हैं । प्रत्येक कर्म का विपाक होता है । माना जाता है कि दर्शनावरणीय कर्म का विपाक होता है तब नींद आती है । मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, अभी आपको नींद नहीं आ रही है । आप दत्तचित्त होकर प्रवचन सुन रहे हैं । तो क्या दर्शनावरणीय कर्म का उदय या विपाक समाप्त हो गया ? दिन में नींद नहीं आती तो क्या दिन में दर्शनावरणीय कर्म का उदय समाप्त हो गया ? रात को सोने का समय है । उस समय नींद आने लगती है, पहले नहीं आती । तो क्या दर्शनावरणीय कर्म का उदय समाप्त हो गया ? कर्म विद्यमान् है, चालू है, पर वह विपाक देता है द्रव्य के साथ, काल और क्षेत्र के साथ । एक क्षेत्र में नींद बहुत आती है और दूसरे क्षेत्र में नींद नहीं आती । एक काल में नींद बहुत सताती है और दूसरे काल में नींद गायब हो जाती है । क्षेत्र और काल—दोनों निमित्त बनते हैं कर्म के विपाक में । बेचारे नारकीय जीवों को नींद कभी आती ही नहीं । कहाँ से आएगी ? वे इतनी सघन पीड़ा भोगते हैं कि नींद हराम हो जाती है । तो क्या यह मान लें कि नारकीय जीवों में दर्शनावरणीय कर्म समाप्त हो गया ? नहीं, उनमें दर्शनावरणीय कर्म का अस्तित्व है, पर क्षेत्र या वेदना का ऐसा प्रभाव है कि नींद आती ही नहीं । प्रत्येक कर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, जन्म आदि-आदि परिस्थितियों के साथ अपना विपाक देता है । ये सारी कर्म की सीमाएँ हैं । कर्म सब कुछ नहीं करता । जब व्यक्ति जागरूक होता है तब किया हुआ कर्म भी टूटता सा लगता है ।

कर्म में कितना परिवर्तन होता है, इसको समझना चाहिए । भगवान्

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर ने कर्म का जो दर्शन दिया, उसे सही नहीं समझा गया। अन्यथा कर्मवाद के विषय में इतनी गलत मान्यताएँ नहीं होतीं। आज भारतीय मानस में कर्मवाद और भाग्यवाद की इतनी भ्रान्तपूर्ण मान्यताएँ घर कर गई हैं कि आदमी उन मान्यताओं के कारण बीमारी भी भुगतता है, कठिनाइयाँ भी भुगतता है और गरीबी भी भुगतता है। गरीब आदमी यही सोचता है कि भाग्य में ऐसा ही लिखा है, अतः ऐसे ही जीना है। बीमार आदमी भी यही सोचता है कि भाग्य में बीमारी का लेख लिखा हुआ है, अतः रुग्णावस्था में ही जीना है। वह हर कार्य में कर्म का बहाना लेता है और दुःख भोगता जाता है। आज उसकी आदत ही बन गई है कि वह प्रत्येक कार्य में बहाना ढूँढ़ता है।

एक न्यायाधीश के सामने एक मामला आया। लड़ने वाले थे पति और पत्नी/पत्नी ने शिकायत की कि मेरे पति ने मेरा हाथ तोड़ डाला। जज ने पति से पूछा—"क्या तुमने हाथ तोड़ा है?" उसने कहा—"हाँ! मैं शराब पीता हूँ। गुस्सा आ गया और मैंने पत्नी का हाथ तोड़ डाला।" जज ने सोचा—घरेलू मामला है। पति को समझाया, मारपीट न करने की बात कही और केस समाप्त कर दिया।

कुछ दिन बीते। उसी जज के समक्ष वे दोनों—पति-पत्नी पुनः उपस्थित हुए। पत्नी ने शिकायत के स्वर में कहा—"इन्होंने मेरा दूसरा हाथ भी तोड़ डाला है।" जज ने पति से पूछा। उसने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा—"जज महोदय! मुझे शराब पीने की आदत है। एक दिन मैं शराब पीकर घर आया। मुझे देखते ही पत्नी बोली—शराबी आ गया। शराब की भाँति मैं उस गाली को भी पी गया। इतने में ही पत्नी फिर बोली—न्यायाधीश भी निरा मूर्ख है, आज ये कारावास में होते तो मेरा दूसरा हाथ नहीं टूटता। जब पत्नी ने यह कहा तब मैं अपने आपे से बाहर हो गया। मैंने स्वयं का अपमान तो धैर्यपूर्वक सह लिया पर न्यायाधीश का अपमान नहीं सह सका और मैंने इसका दूसरा हाथ भी तोड़ डाला। यह मैंने न्यायाधीश के सम्मान की रक्षा के लिए किया। मैं अपराधी नहीं हूँ।"

आदमी को बहाना चाहिए। बहाने के आधार पर वह अपनी कमजोरियाँ छिपाता है। और इस प्रक्रिया से अनेक समस्याएँ खड़ी होती हैं। यदि आदमी साफ होता, बहानेबाजी से मुक्त होता तो समस्याएँ इतनी नहीं होतीं।

कर्म और भाग्य का बहाना भी बड़ा बहाना बन गया है। इसके सहारे अनेक समस्याएँ उभर रही हैं। इन समस्याओं का परिणाम आदमी को स्वयं भुगतना पड़ रहा है। वह परिणामों को भोगता जा रहा है। जब दृष्टिकोण,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मान्यताएँ और धारणाएँ गलत होती हैं तब उनके परिणामों से उबारने वाला कोई नहीं होता।

"सब कुछ कर्म ही करता है"—यह अत्यन्त भ्रान्त धारणा है। आदमी ने सापेक्षता को विस्मृत कर दिया। सब कुछ कर्म से नहीं होता।

काल, स्वभाव, नियति, पुराकृत [हमारा किया हुआ] और पुरुषार्थ— ये पाँच तत्त्व हैं। इन्हें समवाय कहा जाता है। ये पाँचों सापेक्ष हैं। यदि किसी एक को प्रधानता देंगे तो समस्याएँ खड़ी हो जाएँगी। काल प्रकृति का एक तत्त्व है। प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव अपना-अपना होता है। नियति सार्वभौम नियम है, जागतिक नियम है। यह सब पर समान रूप से लागू होता है। व्यक्ति स्वयं कुछ करता है। मनसा, वाचा, कर्मणा, जाने-अनजाने, स्थूल या सूक्ष्म प्रवृत्ति के द्वारा जो किया जाता है, वह सारा का सारा अंकित होता है। जो पुराकृत किया गया है, उसका अंकन और प्रतिबिम्ब होता है। प्रत्येक क्रिया अंकित होती है और उसकी प्रतिक्रिया भी होती है। क्रिया और प्रतिक्रिया का सिद्धान्त कर्म की क्रिया और प्रतिक्रिया का सिद्धान्त है। करो, उसकी प्रतिक्रिया होगी। गहरे कूए में बोलेंगे तो उसकी प्रतिध्वनि अवश्य होगी। ध्वनि की प्रतिध्वनि होती है। बिम्ब का प्रतिबिम्ब होता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। यह सिद्धान्त है दुनिया का। प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति का परिणाम होता है और उसकी प्रवृत्ति होती है। कर्म अपना किया हुआ होता है। कर्म का कर्त्ता स्वयं व्यक्ति है और परिणाम उसकी कृति है, यह प्रतिक्रिया के रूप में सामने आती है। इसलिए इसे कहा जाता है—पुराकृत। इसका अर्थ है—पहले किया हुआ। पाँचवाँ तत्त्व है—पुरुषार्थ। कर्म और पुरुषार्थ—दो नहीं, एक ही हैं। एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। इनमें अन्तर इतना सा है कि वर्तमान का पुरुषार्थ "पुरुषार्थ" कहलाता है और अतीत का पुरुषार्थ "कर्म" कहलाता है। कर्म पुरुषार्थ के द्वारा ही किया जाता है, कर्तृत्व के द्वारा ही किया जाता है। आदमी पुरुषार्थ करता है। पुरुषार्थ करने का प्रथम क्षण पुरुषार्थ कहलाता है और उस क्षण के बीत जाने पर वही पुरुषार्थ कर्म नाम से अभिहित होता है।

ये पाँच तत्त्व हैं। पाँचों सापेक्ष हैं। सर्व शक्तिमान एक भी नहीं है। सब की शक्तियाँ सीमित हैं, सापेक्ष हैं। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि हम स्वतंत्र भी हैं और परतंत्र भी हैं।

दूसरा प्रश्न है—उत्तरदायी कौन ? काल, स्वभाव, नियति और कर्म— ये सब हमें प्रभावित करते हैं, पर चारों उत्तरदायी नहीं हैं। उत्तरदायी है व्यक्ति का अपना पुरुषार्थ, अपना कर्तृत्व। आदमी किसी भी व्यवहार या आचरण के दायित्व से छूट नहीं सकता। यह बहाना नहीं बनाया जा सकता कि "योग ऐसा ही था, कर्म था, नियति और स्वभाव था, इसलिए ऐसा घटित हो गया।" ऐसा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सोचना या बहाना करना गलत होगा । अपने उत्तरदायित्व को हमें स्वीकारना होगा । हमें यह कहना होगा कि अपने आचरण और व्यवहार का सारा उत्तर-दायित्व हम पर है । "उत्तरदायी कौन" की मीमांसा में मैंने पहले कहा था कि भिन्न-भिन्न क्षेत्र के व्यक्ति भिन्न-भिन्न तत्त्वों को उत्तरदायी बताते हैं । मनोवैज्ञानिक, रासायनिक, शरीरशास्त्री और कर्मवादी—अपने-अपने दर्शन के अनुसार पृथक्-पृथक् तत्त्वों को उत्तरदायी कहते हैं । पर ये सब उत्तर सापेक्ष हैं । शरीर में उत्पन्न होने वाले रसायन हमें प्रभावित करते हैं, नाड़ी-संस्थान हमें प्रभावित करता है, वातावरण और परिस्थिति हमें प्रभावित करती है । ये सब प्रभावित करने वाले तत्त्व हैं, पर उत्तरदायित्व किसी एक का नहीं है । किसका होगा ? ये सब अचेतन हैं । काल अचेतन है, पदार्थ का स्वभाव अचेतन है, नियति और कर्म अचेतन हैं । हमारा ग्रन्थितंत्र और नाड़ीतंत्र भी अचेतन है । परिस्थिति और वातावरण भी अचेतन है । पूरा का पूरा तंत्र अचेतन है, फिर उत्तरदायित्व कौन स्वीकारेगा ? अचेतन कभी उत्तरादायी नहीं हो सकता । उसमें उत्तरदायित्व का बोध नहीं होता । वह दायित्व का निर्वाह भी नहीं करता । दायित्व का प्रश्न चेतना से जुड़ा हुआ है । चेतना के संदर्भ में ही उस पर मीमांसा की जा सकती है । जहाँ ज्ञान होता है वहाँ उत्तरदायित्व का प्रश्न आता है । जब सब अंधे ही अंधे हैं, वहाँ दायित्व किसका होगा । अंधों के साम्राज्य में दायित्व किसका ? सब पागल ही पागल हों तो दायित्व कौन लेगा ? पागलों के साम्राज्य में जो पागल नहीं होता, उसे भी पागल बन जाना पड़ता है । यदि वह पागल नहीं बनता है तो सुख से जी नहीं सकता । दायित्व की बात केवल चेतना जगत् में आती है जहाँ चेतना का विवेक और बोध होता है और दायित्व-निर्वाह की क्षमता है । हमारा पुरुषार्थ चेतना से जुड़ा हुआ है । पुरुषार्थ चेतना से निकलने वाली वे रश्मियाँ हैं जिनके साथ दायित्व का बोध और दायित्व का निर्वाह जुड़ा हुआ है ।

हमारा पुरुषार्थ उत्तरदायी होता है । इसको हम अस्वीकार नहीं कर सकते । हमें अत्यन्त ऋजुता के साथ अपने व्यवहार और आचरण का दायित्व ओढ़ लेना चाहिए । उसमें कोई झिझक नहीं होनी चाहिए । जब तक हम अपने आचरण और व्यवहार के उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करेंगे तब तक उनमें परिष्कार भी नहीं करेंगे ।

हमारे समक्ष दो स्थितियाँ हैं—एक है अपरिष्कृत आचरण और व्यवहार और दूसरी है परिष्कृत आचरण और व्यवहार । जब तक उत्तरदायित्व का अनुभव नहीं करेंगे तब तक आचरण और व्यवहार अपरिष्कृत ही रहेगा, अपरिमार्जित और पाशविक ही रहेगा । वह कभी ऊँचा या पवित्र नहीं बनेगा । वह कभी स्वार्थ की मर्यादा से मुक्त नहीं बनेगा ।

भगवान् महावीर ने कर्मवाद के क्षेत्र में जो सूत्र दिए, मैं दार्शनिक दृष्टि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

से उन्हें बहुत मूल्यवान् मानता हूँ । सामान्य आदमी इतना ही जानता है कि आदमी कर्म से बंधा हुआ है । अतीत से बंधा हुआ है । महावीर ने कहा—"किया हुआ कर्म भुगतना पड़ेगा ।" यह सामान्य सिद्धान्त है । इसके कुछ अपवाद-सूत्र भी हैं । कर्मवाद के प्रसंग में भगवान् महावीर ने उदीरणा, संक्रमण, उद्वर्तन और अपवर्तन के सूत्र भी दिए । उन्होंने कहा—कर्म को बदला जा सकता है, [कर्म को तोड़ा जा सकता है], कर्म को पहले भी किया जा सकता है, कर्म को बाद में भी किया जा सकता है । यदि पुरुषार्थ सक्रिय हो, जागृत हो तो हम जैसा चाहें वैसे कर्म को उसी रूप में बदल सकते हैं । संक्रमण का सिद्धान्त कर्मवाद की बहुत बड़ी वैज्ञानिक देन है । मैंने इस पर जैसे-जैसे चिन्तन किया, मुझे प्रतीत हुआ कि आधुनिक "जीव-विज्ञान" की जो नई वैज्ञानिक धारणाएँ और मान्यताएँ आ रही हैं, वे इसी संक्रमण सिद्धान्त की उपजीवी हैं । आज के वैज्ञानिक इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि "जीन" को यदि बदला जा सके तो पूरी पीढ़ी का कायाकल्प हो सकता है । यदि ऐसी कोई टेक्निक प्राप्त हो जाए, कोई सूत्र हस्तगत हो जाए, जिससे "जीन" में परिवर्तन लाया जा सके तो अकल्पित क्रान्ति घटित हो सकती है । यह "जीन" व्यक्तित्व-निर्माण का घटक तत्त्व है ।

संक्रमण का सिद्धान्त जीन को बदलने का सिद्धान्त है । संक्रमण से जीन को बदला जा सकता है । कर्म परमाणुओं को बदला जा सकता है । बड़ा आश्चर्य हुआ जब एक दिन हमने इस सूत्र को समझा । बड़े-बड़े तत्त्वज्ञ मुनि भी इस सिद्धान्त को आश्चर्य से देखने लगे । एक घटना याद आती है । मैं अपनी पहली पुस्तक "जीव अजीव" लिख रहा था । उस समय हमारे संघ के आगमज्ञ मुनि रंगलालजी [बाद में वे संघ से पृथक् हो गए] उनके सामने मेरी पुस्तक का एक अंश आया । उसमें चर्चा थी कि पाप को पुण्य में बदला जा सकता है और पुण्य को पाप में बदला जा सकता है । मुनि रंगलालजी ने कहा—यह नहीं हो सकता । इस पर पुनश्चिन्तन करना चाहिए । मैंने सोचा—आगम के विशेष अध्येता मुनि ऐसा कह रहे हैं, मुझे पुनः सोचना चाहिए । मैंने सोचा, पर मेरे चिन्तन में वही बात आ रही थी । मैंने संक्रमण पर और गहराई से चिन्तन किया । पर निष्कर्ष वही आ रहा था, जो मैंने लिखा था । मैंने उन मुनि से कहा—क्या यह सम्भव नहीं है कि किसी ने पाप कर्म का बंध किया, किन्तु बाद में वही व्यक्ति अच्छा पुरुषार्थ करता है तो क्या पाप, जो कुफल देने वाला है, वह पुण्य के रूप में नहीं बदल जाएगा ? इसी प्रकार एक व्यक्ति ने पुण्य कर्म का बंध किया, किन्तु बाद में इतने बुरे कर्म किए, बुरा आचरण और व्यवहार किया, तो क्या वे पुण्य के परमाणु पाप के रूप में नहीं बदल जाएँगे ? उन्होंने कहा—ऐसा तो हो सकता है । मैंने कहा—यही तो मैंने लिखा है । यही तो संक्रमण का सिद्धान्त है । एक कथा के माध्यम से यह बात और स्पष्टता से समझ में आ जाती है—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दो भाई थे। एक बार दोनों एक ज्योतिषी के पास गए। बड़े भाई ने अपने भविष्य के बारे में पूछा। ज्योतिषी ने कहा—"तुम्हें कुछ ही दिनों के पश्चात् सूली पर लटकना पड़ेगा। तुम्हें सूली की सजा मिलेगी।" छोटे भाई ने भी अपना भविष्य जानना चाहा। ज्योतिषी बोला—तुम भाग्यवान् हो। तुम्हें कुछ ही समय पश्चात् राज्य मिलेगा, तुम राजा बनोगे। दोनों आश्चर्य-चकित रह गए। कहाँ राज्य का लाभ और कहाँ सूली की सजा ? असम्भव-सा था। दोनों घर आ गए। बड़े भाई ने सोचा—ज्योतिषी ने जो कहा है, सम्भव है वह बात मिल जाए। अब मुझे सम्भल कर कार्य करना चाहिए। वह जागरूक और अप्रमत्त बन गया। उसका व्यवहार और आचरण सुधर गया। उसे मौत सामने दीख रही थी। जब मौत सामने दीखने लगती है तब हर आदमी बदल जाता है। बड़े-से-बड़ा नास्तिक भी मरते-मरते आस्तिक बन जाता है। ऐसे नास्तिक देखे हैं जो जीवन भर नास्तिकता की दुहाई देते रहे, पर जीवन के अंतिम क्षणों में पूर्ण आस्तिक बन गए। बड़े भाई का दृष्टिकोण बदल गया, आचरण और व्यवहार बदल गया और उसके व्यक्तित्व का पूरा रूपान्तरण हो गया।

छोटे भाई ने सोचा—राज्य मिलने वाला है, अब चिन्ता ही क्या है ? वह प्रमादी बन गया। उसका अहं उभर गया। अब वह आदमी को कुछ भी नहीं समझने लगा। एक-एक कर अनेक बुराइयाँ उसमें आ गईं। भविष्य में प्राप्त होने वाली राज्य सत्ता के लोभ ने उसे अंधा बना डाला। सत्ता की मदिरा का मादकपन अनूठा होता है। उसकी स्मृति मात्र आदमी को पागल बना देती है। वह सत्ता के मद में मदोन्मत्त हो गया। वह इतना बुरा व्यवहार और आचरण करने लगा कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कुछ दिन बीते। बड़ा भाई कहीं जा रहा था। उसके पैर में सूल चुभी और वह उसके दर्द को कुछ दिनों तक भोगता रहा। छोटा भाई एक अटवी से गुजर रहा था। उसकी दृष्टि एक स्थान पर टिकी। उसने उस स्थान को खोदा और वहाँ गड़ी मोहरों की थैली निकाल ली।

चार महीने बीत गए। दोनों पुनः ज्योतिषी के पास गए। दोनों ने कहा—ज्योतिषीजी ! आपकी दोनों बातें नहीं मिलीं। न सूली की सजा ही मिली और न राज्य ही मिला। ज्योतिषी पहुँचा हुआ था। बड़ा निमित्तज्ञ था। उसने बड़े भाई की ओर मुड़कर कहा—"मेरी बात असत्य हो नहीं सकती। तुमने अच्छा आचरण किया अन्यथा तुम पकड़े जाते और तुम्हें सूली की सजा मिलती। पर वह सूली की सजा शूल से टल गई। बताओ, तुम्हारे पैर में शूल चुभी या नहीं ?" छोटे भाई से कहा—"तुम्हें राज्य प्राप्त होने वाला था। पर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम प्रमत्त बने, बुरा आचरण करने लगे। तुम्हारा राज्य लाभ मोहरों में टल गया।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि संचित पुण्य बुरे पुरुषार्थ से पाप में बदल जाते हैं और संचित पाप अच्छे पुरुषार्थ से पुण्य में बदल जाते हैं। यह संक्रमण होता है, किया जाता है।

मुनिजी को फिर मैंने कहा—यह जैन दर्शन का मान्य सिद्धान्त है और मैंने इसी का "जीव अजीव" पुस्तक में विमर्श किया है। 'स्थानांग' सूत्र में चतुर्भंगी मिलती है—

चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—

सुभे नाम मेगे सुभविवागे,
सुभे नाम मेगे असुभविवागे,
असुभे नाम मेगे सुभविवागे,
असुभे नाम मेगे असुभविवागे। (ठाणं ४/६०३)

एक होता है शुभ, पर उसका विपाक होता है अशुभ। दूसरे शब्दों में बंधा हुआ है पुण्य कर्म, पर उसका विपाक होता है पाप। बंधा हुआ है पाप कर्म, पर उसका विपाक होता है पुण्य। कितनी विचित्र बात है। यह सारा संक्रमण का सिद्धान्त है। शेष दो विकल्प सामान्य हैं। जो अशुभ रूप में बंधा है, उसका विपाक अशुभ होता है और जो शुभरूप में बंधा है, उसका विपाक शुभ होता है। इन दो विकल्पों में कोई विमर्शणीय तत्त्व नहीं है, किन्तु दूसरा और तीसरा—ये दोनों विकल्प महत्त्वपूर्ण हैं और संक्रमण सिद्धान्त के प्ररूपक हैं। संक्रमण का सिद्धान्त पुरुषार्थ का सिद्धान्त है। ऐसा पुरुषार्थ होता है कि अशुभ-शुभ में और शुभ अशुभ में बदल जाता है।

इस संदर्भ में हम पुरुषार्थ का मूल्यांकन करें और सोचें कि दायित्व और कर्तृत्व किसका है? हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि सारा दायित्व और कर्तृत्व है पुरुषार्थ का। अच्छा पुरुषार्थ कर आदमी अपने भाग्य को बदल सकता है। अनेक बार निमितज्ञ बताते हैं—भाई! तुम्हारा भाग्य अच्छा है, पर अच्छा कुछ भी नहीं होता। क्योंकि वे अपने भाग्य का ठीक निर्माण नहीं करते, पुरुषार्थ का ठीक उपयोग नहीं करते। पुरुषार्थ का उचित उपयोग न कर सकने के कारण कुछ भी नहीं हुआ और बेचारा ज्योतिषी झूठा हो गया। उसकी भविष्यवाणी असत्य हो गई।

ज्योतिषी ने किसी को कहा कि तुम्हारा भविष्य खराब है। उस व्यक्ति

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ने उसी दिन से अच्छा पुरुषार्थ करना प्रारम्भ कर दिया और उसका भविष्य अच्छा हो गया।

सुकरात के सामने एक व्यक्ति आकर बोला—"मैं तुम्हारी जन्म-कुंडली देखना चाहता हूँ।" सुकरात बोला—"अरे ! जन्मा तब जो जन्म-कुंडली बनी थी, उसे मैं गलत कर चुका हूँ। मैं उसे बदल चुका हूँ। अब तुम उसे क्या देखोगे ?"

पुरुषार्थ के द्वारा व्यक्ति अपनी जन्म-कुंडली को भी बदल देता है। ग्रहों के फल-परिणामों को भी बदल देता है, भाग्य को बदल देता है। इस दृष्टि से मनुष्य का ही कर्तृत्व है, उत्तरदायित्व है। दूसरे शब्दों में पुरुषार्थ का ही कर्तृत्व है और उत्तरदायित्व है। महावीर ने पुरुषार्थ के सिद्धान्त पर बल दिया, पर एकांगी दृष्टिकोण की स्थापना नहीं की। उन्होंने सभी तत्त्वों के समवेत कर्तृत्व को स्वीकार किया, पर उत्तरदायित्व किसी एक तत्त्व का नहीं माना।

भगवान् महावीर के समय की घटना है। शकडाल नियतिवादी था। भगवान् महावीर उसके घर ठहरे। उसने कहा—"भगवन् ! सब कुछ नियति से होता है। नियति ही परम तत्त्व है।" भगवान् महावीर बोले—"शकडाल ! तुम घड़े बनाते हो। बहुत बड़ा व्यवसाय है तुम्हारा। तुम कल्पना करो, तुम्हारे आवे से अभी-अभी पककर पाँच सौ घड़े बाहर निकाले गए हैं। वे पड़े हैं। एक आदमी लाठी लेकर आता है और सभी घड़ों को फोड़ देता है। इस स्थिति में तुम क्या करोगे ?"

शकडाल बोला—"मैं उस आदमी को पकड़ कर मारूँगा, पीटूँगा।"

महावीर बोले—"क्यों।"

शकडाल ने कहा—"उसने मेरे घड़े फोड़े हैं, इसलिए वह अपराधी है।"

महावीर बोले—"बड़े आश्चर्य की बात है। सब कुछ नियति करवाती है। वह आदमी नियति से बंधा हुआ था। नियति ने ही घड़े फुड़वाए हैं। उस आदमी का इसमें दोष ही क्या है ?"

यह चर्चा आगे बढ़ती है और अन्त में शकडाल अपने नियति के सिद्धान्त को आगे नहीं खींच पाता, वह निरुत्तर हो जाता है।

पुरुषार्थ का अपना दायित्व है। कोई भी आदमी यह कहकर नहीं बच सकता कि मेरी ऐसी ही नियति थी। हमें सचाई का, यथार्थता का अनुभव करना होगा।

इस चर्चा का निष्कर्ष यह है कि अप्रमाद बढ़े और प्रमाद घटे, जागरूकता बढ़े और मूर्छा घटे। पुरुषार्थ का उपयोग सही दिशा में बढ़े और गलत दिशा में जाने वाला पुरुषार्थ टूटे। हम अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करें। □

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org